

---

विक्टोरिया क्रॉस मेडल, इम्पारिअल देहली,  
में मुद्रित हुई ।

---

# ❀ समर्पण ❀

—१६३—

परम पूज्य जंगम तीर्थस्वरूप श्रीमद्वि-  
जयानन्द सूरेश्वर (आत्मारामजी) महाराज !  
आपकी ग्रन्थरचना देखनेसे मुझे प्रतीति हुई  
है कि आप एक उद्धारक पुरुष थे ।

यदि आप इन वर्तमानकालमें विद्यमान  
होते तो अवश्य ही इस गरम हुए लोहेका  
घाट घड़े बिना न रहते । आप भावाचार्य हैं,  
थे और रहेंगे । मेरे लिये तो आप नर्वया  
परोक्ष ही रहे हैं तथापि आपकी ग्रन्थरचना  
में मुग्ध होकर मैं यह अपने विचारोंकी माला  
आपके कमलमें समर्पित करता हूँ ।

सत्य मेधा देव

## ❀ धन्यवाद ❀



इस ग्रन्थमें आर्थिक सहाय करनेवाले महानुभावोंकी  
शुभ नामावली

१५० जैनसमाजभूषण शेट ज्वालाप्रसादजी	महेन्द्रगढ़
१०० लाला गोकलचन्दजी जौहरी	देहली
१०० लाला हजारीमलजी जौहरी	देहली
५० बाबू भैरोदान जेठमलजी	बीकानेर
५० लाला खैरानालालजी पद्ममलजी	देहली
५० लाला रतनलालजी पारेख	देहली

इन मज्जनोंको हय इस शुभकार्यके लिये अन्तःक-  
रण पूर्वक धन्यवाद देते हैं ।

### ग्राहकोंकी नामावली

२४ कारी लाला जगन्नाथ दीवानचदजी	गृजगवाना
२५ लाला मनेरुचन्द ज्योतिनाथजी	गजगवाना
२५ श्रीमधु नारायण लाला मादनचान्द्रजी व बकाल	ब्राह्मगमजी

२४ लाला रामरामलाल जी	बलाचौर
५ श्री हरियामजी पुस्तकालय	लाहावट
४ यति श्रीरामपालजी	देहली





## निवेदन ।

—:१९५३:—

जिन सज्जनोंको सामाजिक परिस्थितिका परिज्ञान है वे समझ सकते हैं कि आज जैनसमाजके धर्मगुरुओंकी जो हुक्मीके साम्राज्यमें उनके माने हुए रूढ़ीधर्मके विपरीत और आजकलके धर्मसे सम्बन्ध रखनेवाले सत्यइतिहासको समाजके सामने रखना कितना खतरनाक और उत्तरदायित्वपूर्ण है । जैनसमाज व्यापारी होनेके कारण अपने धार्मिक साहित्य एवं उसके इतिहाससे सर्वथा अनभिज्ञ है और इस विषयका उसे जिज्ञासा भी पैदा नहीं होती । वह अपने धर्मगुरुओं की वाणीको ही सर्वज्ञकी वाणी मानकर उनकी बातलाई हुई रूढ़ क्रियाओंके करनेमें ही स्वर्गप्राप्तिके स्वप्न देख रहा है । धर्मगुरु समाजकी इस अज्ञानताका मनमाना लाभ उठा रहे हैं । उनमेंसे इनेगिने व्यक्तियोंको छोड़कर धार्मिक इतिहासकी शोध करना तो दूर रहा वे स्वयं अपने पूज्यदेव महावीरकी वास्तविक जीवन घटनाओंसे भी अपरिचित हैं । ऐसी दशामें बन्धनोंसे जंकाड़ी हुई जैनजनता अपने सच्चे इतिहास और सूत्रोंके परिज्ञानसे वंचित रहे तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं ।

मुझे पूर्णविश्वास है कि हमारा धर्मइच्छुक अचोध

समाज जो गुरुवर्गीय अशास्त्रीय रुढ़ियोंको धर्म













इतर किसी भीतराग की मूर्तिको विदेशी पोशाक, जाकिट, का-  
सर, यैगरा से सुसज्जितकर उसका खिलौने जितना भी  
सौन्दर्य नष्ट नष्ट करके अपने मानव समाज की सकलता समझ  
रहा है ।... मैं इसे धर्मदम्भ और ठोंग समझता हूँ । अपने इस  
समाज की ऐसी स्थिति देखकर मूर्तिपूजकके तौरपर मुझे भी  
बड़ा दुःख होता है ।" चोट खाये हुये दखावड़ के समान लेख-  
कके चुटीले हृदयसे यह शब्द बस्तावू निकले हैं ।

देवद्रव्यनामक तीसरे स्तम्भमें लिखा है:- "इसके कारण ही  
आज जैनसमाज की प्रगति बचीलों बैरिष्ठों और अशक्तों  
में गड़ी जा रही है और प्रतिदिन समाज क्षयरोगसे पीड़ित  
रोगीके समान विकराल कालकी तरफ खिंचा जा रहा है ।"  
मुझे सिर्फ इसी बातका खेद होता है कि जिन पवित्र निर्भन्धोंने  
लोकहित की दृष्टिसे जिस वादको नियोजित किया था वही  
वाद आज हमें अपना प्राप्त बना रहा है । अहो !! कैसा भीषण  
परिवर्तन !! कैसा पैशाचिक विकार !! और सनेकान्तवादकी  
मुद्राधारवालों का भी यह कैसा भयंकर एकान्तवाद है" !!  
यह लेखककी दृढ़तन्त्रीकी झंकार है जो अपने समाजकी लुब्ध,  
पीड़ित एवं सवस्तु श्ववस्था में पिलाड़ित होनेपर गुँज  
निबली है ।

आगमवाद के स्तम्भमें अनेक प्रश्नों की समावाचना करने  
हुए लिखा है वनमान समयमें इस प्रकार की अनेक कथा  
एवं द्वारा उपभ्रष्ट ने बंदकर ग्रामों खीनखाब और जमीन  
तिगड़ेने गहरा विराजमान होकर हमारे कुलगुरु धनाशंक



नाथाइ की शक्ति सरिता में धोने के लिये बहियल हो जाना चाहिये । व्यवहार कुशल आधारनिपुण जैनसमाजको भविष्य में आनेवाली आवस्थियोंके प्रतिबोधका जनीम उपाय करनेना चाहिये । प्रतिष्ठा लाखों रुपया धार्मिक मुकदमेशाही में व्यय करने वाली मन्दिरोंकी दीवारों पर मनो मंत्र लिखाने वाली, लाखों रुपया मद्यपानमे पहानेवाली लीज असत्यधन मुनिव-  
शियोंके लिये लुटा देने वाली जैनसमाज "इष्टमात्र" के हम शेरको बिकार पूर्वक पेटे लीज समझे ।

सगर जब भी न बरसने में तो नित जाहंगी दुनिया में ।

सुन्दरी दासनां सब भौ न हांगी दासनानेने ॥

विश्वी भाषा भाषिकां च। ऐसी कल्पना पुनश्च दृष्टेया  
सर्वभाषा प्रसार होना, इसका निमित्त कल्पनाएँ अनादय अन्तराष्ट्र  
च दातुं।

६५४८' धीमल, दिग्दर्श ।

संज्ञा प्रमाणः २ अथवा ३ संज्ञा प्रमाणः २

सुखदः प्रकृत्यनुभवः सौख्यं इति ।

1. 2. 3. 4. 5. 6. 7. 8. 9. 10. 11. 12. 13. 14. 15. 16. 17. 18. 19. 20. 21. 22. 23. 24. 25. 26. 27. 28. 29. 30. 31. 32. 33. 34. 35. 36. 37. 38. 39. 40. 41. 42. 43. 44. 45. 46. 47. 48. 49. 50. 51. 52. 53. 54. 55. 56. 57. 58. 59. 60. 61. 62. 63. 64. 65. 66. 67. 68. 69. 70. 71. 72. 73. 74. 75. 76. 77. 78. 79. 80. 81. 82. 83. 84. 85. 86. 87. 88. 89. 90. 91. 92. 93. 94. 95. 96. 97. 98. 99. 100. 101. 102. 103. 104. 105. 106. 107. 108. 109. 110. 111. 112. 113. 114. 115. 116. 117. 118. 119. 120. 121. 122. 123. 124. 125. 126. 127. 128. 129. 130. 131. 132. 133. 134. 135. 136. 137. 138. 139. 140. 141. 142. 143. 144. 145. 146. 147. 148. 149. 150. 151. 152. 153. 154. 155. 156. 157. 158. 159. 160. 161. 162. 163. 164. 165. 166. 167. 168. 169. 170. 171. 172. 173. 174. 175. 176. 177. 178. 179. 180. 181. 182. 183. 184. 185. 186. 187. 188. 189. 190. 191. 192. 193. 194. 195. 196. 197. 198. 199. 200. 201. 202. 203. 204. 205. 206. 207. 208. 209. 210. 211. 212. 213. 214. 215. 216. 217. 218. 219. 220. 221. 222. 223. 224. 225. 226. 227. 228. 229. 230. 231. 232. 233. 234. 235. 236. 237. 238. 239. 240. 241. 242. 243. 244. 245. 246. 247. 248. 249. 250. 251. 252. 253. 254. 255. 256. 257. 258. 259. 260. 261. 262. 263. 264. 265. 266. 267. 268. 269. 270. 271. 272. 273. 274. 275. 276. 277. 278. 279. 280. 281. 282. 283. 284. 285. 286. 287. 288. 289. 290. 291. 292. 293. 294. 295. 296. 297. 298. 299. 300. 301. 302. 303. 304. 305. 306. 307. 308. 309. 310. 311. 312. 313. 314. 315. 316. 317. 318. 319. 320. 321. 322. 323. 324. 325. 326. 327. 328. 329. 330. 331. 332. 333. 334. 335. 336. 337. 338. 339. 340. 341. 342. 343. 344. 345. 346. 347. 348. 349. 350. 351. 352. 353. 354. 355. 356. 357. 358. 359. 360. 361. 362. 363. 364. 365. 366. 367. 368. 369. 370. 371. 372. 373. 374. 375. 376. 377. 378. 379. 380. 381. 382. 383. 384. 385. 386. 387. 388. 389. 390. 391. 392. 393. 394. 395. 396. 397. 398. 399. 400. 401. 402. 403. 404. 405. 406. 407. 408. 409. 410. 411. 412. 413. 414. 415. 416. 417. 418. 419. 420. 421. 422. 423. 424. 425. 426. 427. 428. 429. 430. 431. 432. 433. 434. 435. 436. 437. 438. 439. 440. 441. 442. 443. 444. 445. 446. 447. 448. 449. 450. 451. 452. 453. 454. 455. 456. 457. 458. 459. 460. 461. 462. 463. 464. 465. 466. 467. 468. 469. 470. 471. 472. 473. 474. 475. 476. 477. 478. 479. 480. 481. 482. 483. 484. 485. 486. 487. 488. 489. 490. 491. 492. 493. 494. 495. 496. 497. 498. 499. 500. 501. 502. 503. 504. 505. 506. 507. 508. 509. 510. 511. 512. 513. 514. 515. 516. 517. 518. 519. 520. 521. 522. 523. 524. 525. 526. 527. 528. 529. 530. 531. 532. 533. 534. 535. 536. 537. 538. 539. 540. 541. 542. 543. 544. 545. 546. 547. 548. 549. 550. 551. 552. 553. 554. 555. 556. 557. 558. 559. 560. 561. 562. 563. 564. 565. 566. 567. 568. 569. 570. 571. 572. 573. 574. 575. 576. 577. 578. 579. 580. 581. 582. 583. 584. 585. 586. 587. 588. 589. 590. 591. 592. 593. 594. 595. 596. 597. 598. 599. 600. 601. 602. 603. 604. 605. 606. 607. 608. 609. 610. 611. 612. 613. 614. 615. 616. 617. 618. 619. 620. 621. 622. 623. 624. 625. 626. 627. 628. 629. 630. 631. 632. 633. 634. 635. 636. 637. 638. 639. 640. 641. 642. 643. 644. 645. 646. 647. 648. 649. 650. 651. 652. 653. 654. 655. 656. 657. 658. 659. 660. 661. 662. 663. 664. 665. 666. 667. 668. 669. 670. 671. 672. 673. 674. 675. 676. 677. 678. 679. 680. 681. 682. 683. 684. 685. 686. 687. 688. 689. 690. 691. 692. 693. 694. 695. 696. 697. 698. 699. 700. 701. 702. 703. 704. 705. 706. 707. 708. 709. 710. 711. 712. 713. 714. 715. 716. 717. 718. 719. 720. 721. 722. 723. 724. 725. 726. 727. 728. 729. 730. 731. 732. 733. 734. 735. 736. 737. 738. 739. 740. 741. 742. 743. 744. 745. 746. 747. 748. 749. 750. 751. 752. 753. 754. 755. 756. 757. 758. 759. 760. 761. 762. 763. 764. 765. 766. 767. 768. 769. 770. 771. 772. 773. 774. 775. 776. 777. 778. 779. 780. 781. 782. 783. 784. 785. 786. 787. 788. 789. 790. 791. 792. 793. 794. 795. 796. 797. 798. 799. 800. 801. 802. 803. 804. 805. 806. 807. 808. 809. 810. 811. 812. 813. 814. 815. 816. 817. 818. 819. 820. 821. 822. 823. 824. 825. 826. 827. 828. 829. 830. 831. 832. 833. 834. 835. 836. 837. 838. 839. 840. 84

7-10-1944

















इस दृष्टि से शास्त्र पौरुषेय हैं, परिवर्तित हैं और अनित्य हैं। इस मान्यता की नींव पर साहित्य विकार के साथ सम्बन्ध रखने वाला मेरा प्रस्तुत प्रश्न युक्त गिना जाय तो इसमें जरा भी अनुचित न होगा। इस प्रश्न को विस्तार पूर्वक समझाने के लिये वर्तमान

---

के उल्लेख और उन्हींकी स्वाध्याय चर्चा, उनके सम समयी जनाली, गोशालक, हस्ती तागस और बुधदेव जैसे प्रखर पादियों के खण्डन मण्डनात्मक संवाद, तथा स्कन्दक, सुधर्मा, जम्बू, गौतम, धेरिक, चेल्लया, कोरिक, धारणी, सिध्दार्थ, त्रिशला, जयन्ती, मृगावती, सुदर्शन, उदायी, आनन्द, कामदेव, और चूड़ली गिता वगैरह वर्धमान के सम समयी अस्तित्व रखने वाले पुद्गलों के नाम निर्देश मिलने से सम्प्रदाय की या उसके संचालकों की अपनी अनादिता के बचाव के लिये ही उपर्युक्त उपाय लेना पड़ा है और उसका उल्लेख सूत्रमुक्तांग सूत्रकी टीकामें शीलांक सूरिने और व्याख्या प्रशस्तिकी टीकामें समरदेव सूरिने किया भी है—

देखो सूत्र० पृ० ३२६ और भगवती पृ० १६४ अजीमगंज-वाता। यदि इस सम्बन्ध में इतिहास को पूछा जाय तो यह स्पष्टतया और सप्रमाण बतला सकता है कि जैसा वात्स्यायन सूत्र इनादि हो सकता है वैन ही यह प्रवचन भी इनादि का सम्भवित हो सकता है।















पाल किया था। उत्तम सामाजिक  
 नियम, कुछ जाति भेदसे  
 विशेष अधिकार से  
 से विकृत हो गये थे। इस  
 विशेष अधिकार से  
 बराब हो गई थी।  
 इनकी हद तक लोभ  
 समिपानी न थी  
 इस वस्तु स्थिति की  
 पड़ी थी। जिन  
 आश्रय लिया था,  
 और वन किया  
 सामाजिक  
 गया था।  
 इस  
 प्रकार  
 पूर्वक  
 प्रत्यक्ष

अथवा

१९१६ ई. प

१९१७ ई. प

१९१८ ई. प



स्वभाव से दयालु न थे और न ही अदयालु थे ।  
 उन्होंने की दशा उदयगत प्रयोग जैसी थी । वे  
 अत्यन्त मिन भापी-वाचंयम थे । उन्होंने अपने  
 जीवन में पधारूपात मार्गको ही अवलम्बित  
 किया था । आपद्धर्म के नामसे अपनी रक्षाके  
 लिये उन्होंने एक भी छूट न रखी थी । शरीर,  
 वचन और मन ये तीनों ही उनके दास बने  
 हुये थे । जैसे एक यंत्रकार यंत्र पर अपनी सत्ता  
 चला सकता है और इच्छानुसार यंत्रको फेर  
 सकता है, उसी तरह श्री वर्धमान ने भी शरीर,  
 वचन और मनसे अपनी इच्छानुसार कार्य  
 लिगा था । यदि शरीर के किसी भागमें  
 खुजली होती तो वे खुजाने तक भी न थे,  
 शरीर परसे मैल दूर करने की वृत्ति तक भी  
 न रखने थे, शकपत्न्या आंखें भी निर्निमेष रखने  
 और सम्पूर्ण नग्न-भाव धारण करके उन्होंने  
 लोकलज्जा जीतने का उद्य प्रयत्न सेचन किया  
 था । इस दशामें उत्तीर्ण होनेके लिये वे आर-  
 ग्यक-अरण्यवासी बने और बहुत लम्बे समय  
 तक उन्होंने कठिन से कठिन ठण्डी, ताप, मूत्र  
 और तृषा आदि कठिनाइयों का सामना किया  
 गा । उन्होंने दीक्षित होते ही लोक प्रवाह के

अनुसरण का परित्याग किया था और अपने अनुयायियों को संदेश सुनाया था कि एो लोगस्सेसणं चरे याने लोकैपणा-लोकवाद का अनुसरण न करना, अर्थात् दुनियां की देखा देखी गतानुगत की लकीर के फकीर न बनना (आचारारुह सूत्र मोर्ची वाला पृ० सं० ८३) ।

दीर्घ तपस्वी श्री वर्धमान और बुद्ध दोनों सम-  
 सामयिक महात्मा थे, दोनों निर्वाणवादी महा-  
 पुण्य थे और दोनों का एक ही लक्ष्य था। परन्तु  
 लक्ष्य को सिद्ध करने की दोनों की प्रवृत्ति सर्वथा  
 जुदी जुदी थी। बुद्ध मध्यम मार्गके उपासक  
 और वर्धमान तीव्र मार्गके हिमायती थे। बुद्धने  
 अपनी मार्ग व्यवस्था में जनता के श्रेयको प्रथम  
 स्थान दिया था, वर्धमानने जनताके संस्पर्श तक  
 का भी त्याग किया था। वर्धमान अपनी रहनी  
 और कहनी में एक ही थे, उन्हें इस बातपर  
 आग्रह कदापि न था कि मैं जो कहता हूँ वही  
 सत्य है और दूसरे का कथन सर्वथा मिथ्या है।  
 वे इस बातको मानते थे कि एक ही लक्ष्य को  
 सिद्ध करने के अनेक साधन हो सकते हैं, इससे  
 साधन भेदमें विरोध की गंध नष्ट नी नहीं

















के बाद लगभग तीनसौ चारसौ वर्ष पीछे-वीर निर्वाण से पांचवीं छठी शताब्दी में आर्य श्री स्कंदिल और वज्रस्वामी की निकटना के समय वैसा ही एक भीषण दुर्भिक्ष इस देशको पार करना पड़ा था । इस विषय का वर्णन करते हुये नंदी चूर्णी लि० पृ० सं० ४ में उल्लेख किया गया है कि चारह वर्षोंय भयंकर दुर्भिक्ष पड़ने पर अन्नके लिये साधु जुदे जुदे स्थान में विचरते थे, इससे श्रुतका ग्रहण, गुणन और चिन्तन न कर सके, इस कारण वह श्रुत नष्ट भ्रष्ट हो गया । जब पुनः सुभिक्ष हुआ तब मथुरा में श्री स्कंदिलाचार्य प्रमुख संघने साधु समुदाय को एकत्रित करके जो जिसे स्मरण रहा था वह सब कालिक १ श्रुत संगठित किया ।” इस पूर्वोक्त दुर्भिक्ष ने पहले दुर्भिक्षसे बचे हुये श्रुतको विशेष हानि पहुंचाई ; यह उद्धार स्मरसेन देश २ के पाट नगर मथुरा में होने के कारण श्रुतमें स्मरसेनी भाषाका विशेष सम्मिश्रण हुआ और उसमें जुदे जुदे अनेक पाठान्तर ३ भी पृथक् को प्राप्त हुये ।

१ देखा-कालिक श्रुत के लिये नंदीमुख ।

२ देख प्रज्ञापन आये देश विचार

३ विंगय पाठ भेदा न उल्लेख में रहे हुये धीअभयदेव







जैन दर्शन का यह सिद्धान्त तत्त्ववाद एवं आचारवाद में सर्व व्यापी होनेके कारण अपना अपरनाम, अनेकान्त दर्शन, भी धारण करता है। उसका यह सिद्धान्त प्रकृति के नियमानुसार है। प्रकृति की ऐसी रचना है कि संयोग वश वज्र जैसा सघन या कठिन और गुरुतम पदार्थ भी नरम प्रवाही जैसा हो जाय और नरम प्रवाही पदार्थ वज्रके समान घन एवं कठोर बन जाता है। यह बात व्यवहारिक है, अनुभव प्रतीत है और प्रयोगशाला देखने वाले को प्रत्यक्ष सिद्ध है, तब फिर श्री वर्धमान के समय के उपदेश, आचार, विचार, या तत्त्ववाद परिवर्तित हों तो इसमें कोई नवीनता नहीं। वर्तमान समय में श्री वर्धमान के जैसे

इतनेक परिवर्तित में यह स्पष्ट मान्य हो सकता है कि गणवर्ग के रत्न हुए गुणों या अर्गों पर कैसे कैसे युग बीतते हैं। त्रिम साहित्य पर कुदस्त की आंखें ही ऐसा भीतर प्रतीत हो यह साहित्य परंपरागत एक सीला ही चला आये यह बात किसी भी विचारक की बुद्धिमें यथार्थ नहीं अब सचनी। छिनु जो अद्भुत साहित्य इस समय विद्यमान है यह दुष्कर्मों के मोक्ष प्रदार्थों के कारण काल, कटी, सखी और हा प्रदुष्ट के अमृत अवस्था से अलग स्थिति में हमारे सामने अस्तित्व धारण करता है।















या उपासक उसी अनिष्ट परिवर्तन को परिपुष्ट करते रहते हैं। शास्त्रोंमें उसका सम्मिश्रण करते हैं इतना ही नहीं अपने पूज्य पुरुष के नामपर चढ़ा कर उसे वज्र लेपके समान दृढ़ करते हैं। जय समाज अनेकानेक वर्षों तक इन अनिष्ट परिवर्तनों का आदि घन जाता है—इनमें रुढ़ हो जाता है तब अनिष्ट परिवर्तन ही उसके धर्म, सिद्धान्त और कर्तव्यका रूप धारण कर लेते हैं, फिर उसके फल स्वरूप में शान्ति की जगह क्लेश, आरोग्य की जगह बीमारी, घनाढ्यता की जगह दरिद्रता, स्वानन्द्य की जगह गुलामी आदि नरकसे भी भयंकर यातनायें सहन करनी पड़ती हैं। आश्चर्य तो इस बातका है कि वर्तमान जैन समाज प्रस्तुत परिस्थिति का अच्छी तरह अनुभव कर रहा है, तथापि जंची आँखें उठा कर वह अपनी दुर्दशा पर दृष्टिपान नहीं करता ? मानों पूर्वोपाजिन का प्रायश्चित्त ही न कर रहा हो, इस तरह मौन मुन्व होकर सब कुछ सहन कर रहा है।

एक गंगा को गंगद्वार करने के लिये किसी एक बैरवने तमाकू खाना पतलाया। गंगाने



मसलते २ उसकी हथेलियां लाल हो गईं इतना ही नहीं किन्तु अब उसके घरकी दीवारें तक भी तमाकू के रंगसे रंगी गईं । अन्तमें उस मनुष्यने दुःखित जीवन बिताकर प्राणों का परित्याग किया, परन्तु तमाकू न छुटी । इसी प्रकार कितनेएक इष्ट परिवर्तन भी उस तमाकू के समान ही हैं । हरएक मनुष्यको परम सत्य के साथ साख्यभाव प्राप्त करने के लिये प्रारंभ में उन परिवर्तनों का आश्रय लेना पड़ता है—उसका आश्रय लिये बिना हमारा आत्म-विकाश हो नहीं सकता । व्यवहारमें भी अनुभव किया जाता है कि किसी कलामें पारंगत होने के लिये प्रारंभमें कल्पित या बनावटी साधनों का सहवास रखना पड़ता है । हमारे यच्च गुढ़ा गुड़ियां आदिके खिलसे गृहव्यवहार और कौटुम्बिक सम्बन्ध सीखते हैं । अद्वितीय भांगालिक बनने के लिये पृथ्वीके बनावटी गोलका आश्रय लेना पड़ता है । बनावटी नदियां, बनावटी समुद्रों, बनावटी पहाड़ों और बनावटी नगरों की ओर सावधानता पूर्वक देखना पड़ता है, ऐसे अनेक उदाहरण प्रतीत होते हैं । परन्तु जब हम परिपक्व



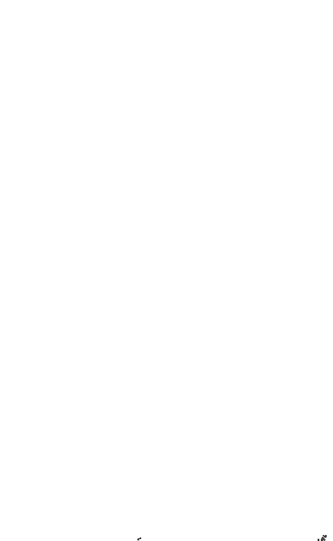




सामग्रियों की कलम करनी आवश्यक है। संसार में कितने एक प्रसंग ऐसे भी उपास्थित होते हैं कि जिनमें कुदरत ही हमें परिवर्तित कर देती है, परन्तु जब हम कुदरतका सामना करके अश्रद्धालु बन बैठते हैं उस वक्त अपरिवर्तित पानके समान हममें दुर्गन्ध की वृद्धि होती रहती है। न फिराये हुये घोड़ेके समान हमारी गति रुक जाती है और अन्तमें चूल्हे पर न फिराई हुई रोटीके समान हमारे नाश का भी प्रारंभ हो जाता है। इस रीतिसे ( विकृत परिणाम में रूढ़ होकर ) हम पिता वै जायते पुत्रः—यापके समान घेदावाली कहावत को भूझ ठहरा कर पुरातन श्री वर्धमान जैसे बुजुर्ग को भी आचार और विचारमें अपने समान मानते हैं यह क्या कम अविवेक है ?

सर्व साधारण लोकहित की ओर दुर्लक्ष्य करके सिर्फ अहंपदी, स्वार्थी और लोलुप बनेहुये ब्राह्मणों ने वैदिक प्राचीन सत्योंमें अनेक सम्मिश्रण कर परिस्थिति के अनुसार परिवर्तनीय वैदिक पद्धति में परिवर्तन न करके वर्तमान वैदिक धर्मका श्री वर्धमान और बूढ़





आज भी पारम्पर्य की विपणन योजना चल रहा है।

उन ब्राह्मणों ने उस समय के भोले भाले समाज को यह उपदेश दिया था, कि हम जो कहें वही सत्य है, हमारे कथनों की सीकी देना या प्रसन्न करने का अधिकार नहीं है। हमारा निर्णय ईश्वरीय निर्णय है, क्योंकि हम ईश्वर के प्रतिनिधि हैं। 'शूद्र नीचने नीच होने के कारण उन्हें नगरों या गांवों रहने का अधिकार नहीं। यदि वे नियम किए हुए समय के पिना गांवों तथा नगरों आवें तो उन्हें भारदण्ड की शिक्षा देना यह राजा का कर्तव्य है, ऐसा न करने वाला राजा गर्भपात के पाप का भागी बनता है। 'शूद्रों को घरबार का

१. मुद्राद् मुद्रायां चरुताः । X X X करि  
 म्भरिहृताः इति नमस्तस्मै नमः ।  
 अत्राद् अत्रिहृताः नमस्तस्मै । नमस्तस्मै परं अत्र  
 न विद्यमानम् । विद्यमानम् नमस्तस्मै । अत्राद् अत्रिहृताः  
 नमस्तस्मै । नमस्तस्मै परं अत्र नमस्तस्मै ।

[illegible]



वैदिक सत्य इतना शोफित (सूज गया) होगया कि जिसके परिणाम में उपनिषदों के प्रवाह से उसे भूशायी होना पड़ा।

यही दशा पोप धर्मकी है। यह धर्म पोप-लीला के नामसे प्रसिद्ध है। क्या इसके लिये यह कम शरम की बात है? कहने का सारांश यह है कि परिस्थिति एवं लोकहित को भूल जानेसे धर्ममें अनिष्ट तत्व पैदा होजाता है और हुआ है। जो लोकहितके साधन हैं वे भी परिस्थिति के विरोधि प्रवाहमें सहने के कारण कितने एक प्राणियों की आत्माको जकड़ने के लिये रस्सी का काम करते हैं। आज प्रत्यक्ष देख रहे हैं, कि रक्षा करने वाली घाड़ ही खेतको खा रही है, धारण करने वाला धर्म ही उसके आश्रितों को नीचे पटक रहा है और माता पिताके समान धर्म गुरुओं को अपनी सन्तान की वेदना पूर्ण कराहना की ओर हठिपात करने तकका भी अवकाश नहीं मिलता। वे अनेक यातनायें सहने हुये जीते जागते जैनियों की सोचनीय दशा पर दुर्लक्ष्य कर अपनी वंशवृद्धि की चिन्ता



हूँ कि वे अथ वा तो बदले की नीतिको ध्यानमें लेकर अपनी स्थितिको सुधारें या पूर्व मुनियोंके समान आवकों का संसर्ग छोड़ कर घनवासी बन जायें ! परन्तु आवकोंके हितके पहाने उनके साथ सम्यन्ध रखने वाले खाते खोल कर और उनके प्रत्येक व्यवहारिक कार्यमें दस्तन-दाजी करके सरकारी पुलिस के समान उनमें पारस्परिक फूट डालकर उन्हें विशेष कदर्थित करने के घृणित कार्यको छोड़ दें ।

अथ हम पाठकोंका इस ओर ध्यान खींचते हैं कि जैन धर्ममें ऐसे कौनसे परिवर्तन हुये जो इष्ट परिवर्तन और अनिष्ट परिवर्तनकी कोटिमें आ सकते हैं और वे मूल जैन धर्मके साथ कितना सम्यन्ध रखते हैं एवं उस तरहके उसमें संमिश्रण किस २ समयसे प्रचलित हुये हैं । मानव जाति इननो अपूर्ण और परतंत्र है कि उसे प्रत्येक प्रवृत्ति में किसी एक नायक की आवश्यकता पड़ती है । नायक बिना व्यवस्थित प्रवृत्ति नहीं हो सकती । घर सम्यन्धी, बाहर सम्यन्धी, लौकिक या पारलौकिक समस्त प्रवृत्तियों में प्राप्त होनेवाली सफलता का कमसे



थी—अर्थात् उनमें सदैव परम माध्यस्थ भाव रहता था। जो स्थिति परम माध्यस्थ की पराकाष्ठा तक पहुँचे हुये मनुष्यकी होती है वैसी स्थिति श्रीवर्धमानकी थी। उनकी समस्त क्रियायें औदयिक होती थीं। जो योगी भोंपड़ी का घास खाने वाली गायको हटाने में अपने माध्यस्थका भंग समझना हो उस पर लोक कल्याण कर भावना का आरोप देना यह मात्र उसकी यशोवर्धना है। श्रीवर्धमानकी यह परिस्थिति आचार्य-रांगसूत्रके नवमें अध्ययन और सूत्रकृतांग सूत्रमें वीरस्तुति नामक प्रकरणके अनाडम्यरी उल्लेख से साफ साफ मालूम हो जाती है। ऐसी वृत्ति वाले श्रीवर्धमानके हाथसे ही हमारे धर्मकी संगठना या संघ रचना का होना मेरी दृष्टिमें सर्वथा अनुचित मालूम होता है। उस समय श्रीवर्धमान ने जो कुछ लोक जागृति की थी उसका समस्त श्रेय उनके मुनिव्रतको ही था। वर्तमान समयमें महर्षि गांधीके समान कहनेकी अपेक्षा कर

१ पारम्पर्येण केवल ज्ञानस्य तावत् फलमौदासीन्यम्

॥४॥ स्वाकरावतारिका. दृष्टा ररिच्छुद । औदासीन्य शब्द

का विशेष विवेचन इस सूत्रकी टीका में देखा









स्थिर नहीं रह सकती। यद्यपि वह नियमबद्ध संगठना मात्र परिवर्तन की पात्र है, तथापि नियंत्रणके कारण वह अपने मूल स्वरूपसे भ्रष्ट नहीं होती। स्थविरोंने जो नियमबद्ध संगठनायें चाँधी थीं वे सिर्फ निर्ग्रन्थों के लिये ही थीं।

वास्तविक निर्विकारि और अनपवादि स्वरूप निम्न लिखे अनुसार है।

१-किसी भी मुमुक्षुने प्राणान्त होने तक किसी प्राणीको दुःख हो वैसी प्रवृत्ति न करना, न कराना और न दूसरेको वैसा करनेकी सम्मति देना।

२-किसी मुमुक्षुने प्राणान्त होने तक असत्य न घोलना, न दूसरे से घुलाना और न ही दूसरे को असत्य घोलने की अनुमति देना।

३-किसी मुमुक्षुने प्राण जाने तक दूसरेकी वस्तु उसके दिये बिना न लेना, न दूसरेसे लिवाना और न ही दूसरेको वैसा करने हुये अनुमति देना।

४-किसी मुमुक्षुने प्राण जाने तक अत्राप्यर्च्य न



ना था । सभी मुमुक्षु पात्र न रखते थे ।  
 तने एक मुमुक्षु मात्र करपात्र थे । बैसा करने  
 असमर्थ मुमुक्षु मात्र एक या दोही पात्र  
 बने, तो भी त्यागकी दृष्टिसे मट्टीका पात्र  
 शेष ठीक माना जाता था । नग्न रहने में ही  
 शेष त्याग समाया था । अधिक मुनि समु-  
 त्त नग्न ही रहता था । परन्तु जो लज्जाको  
 जीत सके थे वे मात्र एक ही वस्त्र धारण  
 करते थे । स्मरण रखना चाहिये कि उस समय  
 आदर्श आबक भी मात्र दोही वस्त्र—एक  
 नीली और दूसरा गेहूँ परिधान करते थे ।  
 धर्ममें निवास करना और गृहस्थियों का  
 विशेष सहवास संयमके प्रतिकूल गिना जाता  
 था । नववाड़ों को पालन करने में विशेष ध्यान

१ देखो आगमोदय समिनिवासा सुवृत्तांग सुव, उदमगां-

परपन गाथा ८-१०, पृ० ८-१०

२ नमस्त एगेयं सोममुपलेपं, श्वसेनं वन्द्यं वि-

प्यजानि.. कर्पात् तानन्द आरुह सोममुपलेपं दानं कुरुते

ने कुरुते सिद्धा अधिक दान प्रदत्त न करने का निर्णय

करता है । उक्तका दृष्टान्त, पृ० ३, ८-१०

लेखात् ।



ता और भूमिके समान सर्व सहनता तक पहुँचे थे, परन्तु उसके तीव्र अभिलाषी थे वे जाने ध्येय तक ही पहुँचने के लिये कितनीएक प्रहण करते थे। वह छूट भी और किसी त में नहीं किन्तु सिर्फ एक दो पात्र रखने पर एकाघ वस्त्र, सो भी गृहस्थ का चर्ता हुवा देने की छूट रखते थे। यह छूट लेने पर भी उनकी सदैव यही भावना रहती थी कि हम य लज्जाको जीत कर सर्वथा यथागत होकर, चर्की भी गरज न रख कर संयमका निर्वाह करके अपने उस उच्च लक्ष्य को प्राप्त करेंगे। छूट लेने वाले छूटका समर्थन न करते थे, परन्तु उस तरह वृद्ध अनुभवी वैद्यकी अनुमति से मी औषधि सेवन करता है उसी तरह उसका खान करते थे और आतुरता के साथ ऐसे समय की प्रतीक्षा करते रहते थे कि शीघ्र आरोग्य प्राप्त हो और इस औषधि से पीछा छूटे। इस प्रकार का उनका आचार था। यहाँ पर मैं उनके आचार के सम्वन्ध में बहुत कम लिख सका हूँ, परन्तु इस विषय को परिपूर्ण समझने की जिज्ञासा वाले पाठकों से मैं निवेदन करता हूँ कि वे आचारांग सूत्र भाषान्तर आद्योपान्त











और उसके लिये वर्तमान में बड़े बड़े मुकदमे करने तक भी नहीं चूकता । यह दशा दिगम्बर जैन समाज की है । श्वेताम्बर पक्ष यन्त्रपात्र पादको ॐ ही श्वेवलम्बिन करता है । उपरोक्त प्रकारसे उसके सूत्र ग्रन्थों में स्पष्टतया अंश लक्षणा का विधान विद्यमान है, तथापि अंश लक्ष शब्दका अनुदरा कन्याके समान अंश लिये अनुकूल अर्थ किया जाता है । जिसके परिणाममें आज इस समाजके मुनि यन्त्रपात्रके गढ़ तक रखने लग गये हैं । इनमेंसे मेरा श्वेताम्बर मूर्तिपूजक संप्रदाय मूर्तिवाद को ही स्वीकारता है और सो भी गहाँ तक कि मूर्तिके नामसे पाँच दुकानें खोलकर लाखों रुपयोंका भन भन करनेमें ही इन्डागन की प्रार्थिका व्यग्र देखता है, मूर्तिके ही नामसे विदगी अदालतोंमें जाकर सभातकी अनुमति न मर्दानगी नगार क

१. अन्तर्यामिनी २. ३. ४. ५. ६. ७. ८. ९. १०. ११. १२. १३. १४. १५. १६. १७. १८. १९. २०. २१. २२. २३. २४. २५. २६. २७. २८. २९. ३०. ३१. ३२. ३३. ३४. ३५. ३६. ३७. ३८. ३९. ४०. ४१. ४२. ४३. ४४. ४५. ४६. ४७. ४८. ४९. ५०. ५१. ५२. ५३. ५४. ५५. ५६. ५७. ५८. ५९. ६०. ६१. ६२. ६३. ६४. ६५. ६६. ६७. ६८. ६९. ७०. ७१. ७२. ७३. ७४. ७५. ७६. ७७. ७८. ७९. ८०. ८१. ८२. ८३. ८४. ८५. ८६. ८७. ८८. ८९. ९०. ९१. ९२. ९३. ९४. ९५. ९६. ९७. ९८. ९९. १००.





किं वर नहीं किन्तु दिन प्रति दिन इन मुनियोंकी  
 आयरसकतायें, इनके अग्रराजात इनने यह गये  
 हैं कि समाज उन्हें पूर्ण करने हुये निषिद्ध गथा  
 है, निषिद्धता जा रहा है। (साधारण स्थिति के  
 आयरस एवं २ नामधारी व पदपीथारी मुनियों  
 का आनुमान कराने हुये करते हैं) वर्तमान  
 समयमें आदर्शमें आदर्श सद्गुणस्थ जिस निम्नता  
 का ऐतदन बताया है, उससे सम्मानता करें सो  
 अथवा वर्तमानके मुनियोंका पलड़ा बिल्कुल  
 नीचे नम जाया है। मैं मानता हूँ कि ये अपनी  
 इस ग्राहकी प्रवृत्तिसे माधमए भीवर्तमान  
 और उनके प्रवृत्तिकी ओर आकाशना कर रहे  
 हैं। ये इस प्रवृत्तिका भीएए मुनियोंके स्वीकारने  
 हैं कि जिसमें समाज आर्थिकोंके दार्शनिकान  
 देनेवाली वर्तमान समय में कठिना देवी भी  
 होती गई है। ये जानकी पूजा करने हैं, जानकी  
 समय सद्गुण वक्तव्य और ऐसे बदलने हैं  
 सद्गुण उन्नी: सद्गुण सद्गुण सद्गुण विद्या  
 विद्या सद्गुण सद्गुण है सद्गुण सद्गुण सद्गुण  
 विद्या सद्गुण सद्गुण सद्गुण सद्गुण है सद्गुण  
 इस बात सद्गुण सद्गुण सद्गुण सद्गुण सद्गुण  
 सद्गुण सद्गुण सद्गुण सद्गुण सद्गुण सद्गुण



बायींके ताले लगाकर उसे अपना कैदी  
 रक्खा है। जिस तरह ज्ञानके लिये वैदिक धर्ममें  
 वेदोंका ठेका ब्राह्मणों ने ही ले रक्खा है वैसे ही  
 इस पक्षके मुनि (चाहे वे मेरे जैसे गृहस्थके पास  
 ही पड़े हों) कहते हैं कि सूत्र पढ़नेका अधिकार  
 मात्र हमें ही है—आयकों को नहीं। उनकी धार्मिक  
 संपत्ति में परम निर्धन्यता, आदर्श आयकता,  
 उच्च जीवन, अनाग्रही जीवन, परम अहिंसकता,  
 प्रमाणिकता, मार्गोन्निवारिता, इत्यादि सद्गुणों  
 के बदले बिलासी साधुता, नामकी आयकता,  
 चेलोंकी वृद्धि, पुष्पकोंकी ममता, अयुक्त पदविषों  
 का मिथ्या आदम्बर, गुणी और गुणकी और  
 ईर्ष्यामृता, बड़े बड़े देवालय, अनेकक और परम  
 तपस्वी तीर्थंकरों के लाखों कण्ठोंके जेवर  
 तथा शत्रुजयवासी आर्क्षीश्वरका कई लाखका  
 जवाहराना। मुकूट है। मुझे अपने इस कमनसिध  
 समाजकी दुर्दशाका निश्च नींचने हूँ पड़ा दुःख  
 होता है। मैं यह भी मानता हूँ कि यदि तम  
 समाजमें जबकि मात्र समाज विनाश शून्य  
 हाका गन्तानुगमिक क प्रवादम पहा जा रहा  
 है काई विनाशक घनव पुष्टताक वननाका धनु-  
 वृकनानुसार इत्यादि कावका प्रगल्भ का ना

संभव है कि उसकी और भी ग़राब स्थिति हो जाय । इस ध्वेताम्वर पक्षमें एक और पन्थ है, जिसे स्यानकवासी के नाम से पहचानने हैं । यह संप्रदाय मूर्तिवादको नहीं मानता । इसके साधुओंमें कहीं २ पर त्यागकी भावना देय पड़ती है, परन्तु वर्तमानमें वे भी अपने लक्ष्यसे विलक्ष हो फैशन की ओर ग्विचे जा रहे हैं । मेरी मान्यताके अनुसार मूर्तिवादको सर्वथा अपिधेय मानना भी अनुचित है । ऐसा करनेसे बहुत से बालजीवोंके जीवनविकाश में बाधा पड़ती है, "भक्तिमार्ग का अवलम्बन करने वालों का कल्याण अटक जाता है" । ग़ैर, करे तो भरे और जैसा पोषे पैसा काटे । मुझे सयसे विशेष यह बात अटकती है कि इन तीनों पक्षवालों ने भले ही अपने २ अनुकूल भुदे २ मन्त्रण्य प्रचलित किये, परन्तु इन्होंने उन मन्त्रण्यों को वर्धमान के नाम पर बढ़ाने का जो साहस किया है उसे मैं भयकर पाप-अपराध-अन्याय मानता हूँ और यह अपराध करने हुए उन्होंने अपनी अनुहम्मतानुसार सकर्मित किये हुए अपने २ मन्त्रण्य का जो अकाल्य समर्पन और परमार्थ

इतर का तिरस्कार किया है इसे मैं महा भीषण तमस्तरण की भगिनी समझता हूँ ।

पाठक प्रश्न करेंगे कि इस तरह रजसे गात्र बनने और राईसे पर्यंत बननेका हेतु क्या है । उत्तर में मुझे नम्रता पूर्वक कहना पड़ेगा कि इसका एक मात्र हेतु जैन साहित्य का विकार है । साहित्यमें समय समय पर परिवर्तन होना स्वाभाविक है, परन्तु जो परिवर्तन अनिष्टाकार में होता है उसका परिणाम समाज के हितके बदले विनाश में उपस्थित होता है ।

शरीर में बड़ा हुआ सौजा एक भीषण व्याधि माना जाता है, वैसे ही साहित्य पर बड़ा हुआ एकान्तताका और अनुकूलता-व्याप्यत्वका सौजा भी लगना ही अयोग्य है । साहित्य के मौजोंको उतारनेके लिये यदि कोई अमोघ उपाय हो तो वह उसका व्यवस्य इतिहास है । यहाँ पर मुझे पाठकोंके सामने साहित्यके साथ सम्बन्ध रखनेवाली सामान्य ऐतिहासिक परिस्थितिके कारण ब्रह्मका व्यवसाय नहीं है, तथापि अचरित्र विचित्रक मूल मुराका दृष्टिकोण पूर्वक व्याख्या विवरण करना ये करना अनिवार्य

समझता हूँ। उन मुद्दोंका क्रम मैंने इस प्रकार रक्खा है। १ श्वेताम्बर दिगम्बरवाद, २ चैत्यवाद, ३ देवद्रव्यवाद, और ४ आगमवाद। मेरा सारा व्याख्यान ( यह नियन्ध ) इन चारों मुद्दों में ही पूर्ण होगा।

पहले मुद्देमें दिगम्बर श्वेताम्बर के इतिहास को प्रकाशित करना है। उसमें दोनों मतों के मूल कारणके सम्बन्धमें विशेष गवेषणा पूर्वक विचार करना है और साथ ही इस पान का भी विचार करना है कि अंगस्तूत्रों में इस विषयमें क्या २ प्रतिपादन किया गया है, एवं श्वेताम्बर दिगम्बरोंके संप्रदाय भिन्न हुये बाद जैन शास्त्रन को ऐसी २ धाराएँ स्थितियोंमें से गमन करना पड़ा है।

दूसरे मुद्देमें चैत्यवाद पर प्रबल शक्यता जायगा। उसमें मुख्यतया छन्दस्य श्रमाओं की स्थिति चैत्यवाद का मूल अर्थ समझाया जायगा और साथ ही यह भी बतलाया जायगा कि अंगस्तूत्रोंमें चैत्य शब्द किस २ जगह है, एवं अर्थोंमें उपयुक्त किया गया है। चैत्यकी उपपत्ति और उसका मूलतत्त्व इतिहासके

इतर का तिरस्कार किया है इसे मैं महा भयिष्य तमस्वरण की भगिनी समझता हूँ ।

पाठक प्रश्न करेंगे कि इस तरह रजसे गर बनने और राईसे पर्यंत बननेका हेतु क्या है । उत्तर में मुझे नम्रता पूर्वक कहना पड़ेगा कि इसका एक मात्र हेतु जैन साहित्य का विकास है । साहित्यमें समय समय पर परिवर्तन होना स्वाभाविक है, परन्तु जो परिवर्तन अनिष्टाकार में होता है उसका परिणाम समाज के हितके बदले विनाश में उपस्थित होता है ।

शरीर में बढ़ा हुआ सौजा एक भयिष्य व्याधि माना जाता है, वैसे ही साहित्य पर बढ़ा हुआ एकान्तताका और अनुबलना-व्याप्यताका सौजा भी उभरता ही भगंकर है । साहित्य के सौजेको उबारनेके लिये यदि कोई समोप उपाय हो तो वह उसका गवामध्य इतिहास है । यहाँ पर मुझे पाठकोंके सम्मुख साहित्यके साथ सम्बन्ध स्थापनाकी सम्पूर्ण ऐतिहासिक परिस्थितिके हलचल करनेका अवकाश नहीं है, तथापि अपने विवेकके मुक्त मूर्तियोंके दृष्टांत पूर्वक स्वीकृति दिवेषर बताया है अपना कर्तव्य

समझना हैं। उन मुद्दोंका प्रामाण्य मैंने इस प्रकार  
 कहा है। १. श्वेताम्बर दिगम्बरवाद, २ पंच-  
 वाद, ३ देवद्रव्यवाद, और ४ आगमवाद। मेरा  
 सारा व्याख्यान (यह निबन्ध) इन चारों मुद्दों  
 में ही पूर्ण होगा।

पहले मुद्देमें दिगम्बर श्वेताम्बर के इति-  
 हास को प्रकाशित करना है। उसमें दोनों मतों  
 के मूल कारणोंके सम्बन्धमें विशेष गवेषणा  
 पूर्वक विचार करना है और साथ ही इस बात  
 का भी विचार करना है कि अंगरेजों में इस  
 विषयमें क्या र प्रतिपादन किया गया है,  
 एवं श्वेताम्बर दिगम्बरोंके सम्बन्ध निम्न दुये  
 वाद जैन शास्त्रों को पढ़ती ६ पुराण स्थितियोंमें  
 से समझ करना पड़ा है।

दूसरे मुद्देमें श्वेताम्बर पर प्रकाश डालना  
 चाहना। इसमें मुख्यतया जनेक प्रमाणों सहित  
 श्वेताम्बर का मूल कार्य समझना चाहना और  
 साथ ही यह भी बतलाना चाहना है कि  
 इसमें श्वेताम्बर १६०० वर्षों के ६३  
 वर्षोंमें उपजुल १६०० वर्षों के श्वेताम्बर १६  
 वर्षोंमें १६०० वर्षों के श्वेताम्बर १६०० वर्षों के

साथ क्या सम्बन्ध है इस बातका भी स्पष्टीकरण किया जायगा, एवं इस दूसरे मुरेमें मूर्ति गूताकी आवश्यकता बनाने बाद मूर्ति कैसी होनी चाहिये ? उसे क्यों रखना चाहिये ? वह मन्त्र होनी चाहिये या कन्दारे वाली-कई सूत्र वाली होनी चाहिये ? इत्यादि मूर्ति विषयक अनेक प्रश्न, प्रमाण पुरस्क स्पष्ट करनेना मैं माना कर्तव्य समझता हूँ ।

तीसरे में देवद्रव्य के सम्बन्ध में थोड़ी होगी । यह कल्पित है या अहिंसा बगैरह के समान अपरिवर्तनीय तत्त्व है ? अंगसूत्रों में उसका विधान या उल्लेख है वा नहीं ? उसकी उत्पत्ति या प्रारम्भ कबसे हुआ ? किसने और किस लिये किया ? इत्यादि विषयों पर व्याख्यान विचार किये बाद देवद्रव्य का वर्तमान स्थिति के सम्बन्ध में खुलासा करनेका यथामति प्रयत्न किया जायगा । यथामति ही इस गोपान देवद्रव्य के साथ सम्बन्ध रखन वाला कितना एक कथायाकी शास्त्रीय असंगतता बनना कर जैन कथानुयोग के सम्बन्ध में भी दा शब्द लिखे जा





## श्वेताम्बर दिगम्बरवाद ।

— ३३५५ —

श्वेताम्बर और दिगम्बर में दोनों शब्दों के संवदात्मक धमणीनामकों-प्रायकों के साथ जग भी सम्बन्ध नहीं रखने । यदि उनके साथ सम्बन्ध लगाया भी जाय तो दोनों शब्दों का उनमें प्रवृत्तिकारण न पदमेसे उनके लिये वे दोनों शब्द निरर्थक से ही हैं । उनमें श्वेताम्बर या दिगम्बर मूर्ध्नि करनेवाला एक भी चिन्ह न होने से श्वेताम्बर और दिगम्बर संज्ञा वर्धाती कीड़ेको इद्रगोत्र ( इद्रका पालन करने वाला ) कहने के समान पारम्परिक रूप और अर्थ शून्य है । यदि श्वेताम्बर कहलान वाले गृहस्थ मात्र श्वेत हो गये वहनमें हो और दिगम्बर कहलान वाले नम्र ही रहन हो तो उनके लिये उपरोक्त शब्दोंका व्यवहार किया जा सकता है, यह व्युत्पत्ति शास्त्रज्ञानवश है । इससे से यह अनुमान कर सकता है कि उन शब्दोंकी प्रवृत्ति चाह तथे हुई हो परन्तु उसका मूल कारण हमारे भुवनराज ही जान चाहिये । इन शब्दोंके मूल प्रवर्तक साधु भुवनराज का

वर्तमान सरकारकी ओरसे धन्यवाद मिलना चाहिये, कि जिसके परिणाममें वह अदालतों के द्वारा दोनों समाजोंसे लाखों रुपये कमा रही है। श्वेताम्बर और दिगम्बर संज्ञाका सम्बन्ध मुनियोंकी चर्याके साथ ही है, इससे और भी एक बात मालूम हो जाती है और वह यह कि—उस समय दोनोंके श्रमणोपासकों की चर्यामें कुछ भी भेद न होगा। वर्तमानमें जो भेद देख पड़ता है वह उन्हीं तपोधनों के दुराग्रहरूप तालपृच्छा रस है जिन्होंने साधारण-प्रकारके भेदको भी एक मार्गरूप से पकड़ रक्खा होगा। इस बातकी यथार्थता का अनुभव तो तभी हो सकता है जब कि हमारा पीया हुआ कदाग्रह-तालपृच्छ रसका नसा उतर सके।

श्वेताम्बरोंके सूत्र कहते हैं कि यज्ञ और पाप भी रचने चाहिये, इनके बिना दुर्बल, सुकुमार और रोगियोंके शिष्टे संयम हुनागण्य है। यदि साधु यज्ञ न रचये तो टंहीके नासन में क्षतानर्थात् साधुओंकी बात दया हो : यदि सुखसागर साधनेमें जो हिंसा लगती है वह साधने के लिये निमित्त बनती है।

मुनिगोत्रों विशेषतः जंगलोंमें रहनेके काम  
 वहाँ पर होंग मरुदा आदि जन्तुओंका उखा  
 होमिका विशेष ममान है, अतः जो मुनि एक  
 दुःख न सह सकता हो यदि वह पश्यादि  
 रक्खे तो उसे बिना कारण संयम पालनेमें  
 पड़ि दटना पड़ता है । तथा जिस मुनिमें कष्ट  
 को नहीं जीता है उसे भी पशु रखने की आवश्यकता है । क्योंकि वह मुनि कड़ा दृढ़ प  
 पुराणा, मैला कुचैला या किमीका उमरा हुआ  
 पशु अपनी कमर पर लपेट कर हाउताको जीत  
 नेका प्रयास कर सकता है । जब उसे जरा भी  
 शोकलाग का भय न रहे तब वह यदि पशु र  
 रक्खे तो ऐसा हो सकता है । इसी प्रकार पात्र  
 रखने में भी संयम की ही साधना समाई हुई  
 है । आहार करते समय मात्र हाथ ही में लेकर  
 स्निग्ध और द्रवित पदार्थ लानेसे उसका किन्  
 नाएक हिस्सा नीचे भी गिर जाता है और  
 उससे कषित दृष्टिसे हिस्सा का विशेष संभव  
 है । तथा जो मुनि बीमार हो, विस्तर से उठ स  
 सकता हो उसका भी पात्र बिना निर्याह नहीं हो  
 सकता । यदि पात्र हो तो उसके लिये दूसरा  
 मुनि पात्र द्वारा तदुचित आहार पानी ला

सकता है, एवं पात्र होनेसे ही उसके साथ  
 अनंतर कर्म हो सकने हैं । जो साधु घर पात्र  
 रखने बिना निर्दोष संयम पाल सकने हैं उनके  
 लिये घर पात्र रखनेकी कोई राजाज्ञा नहीं है ।  
 विष्णुसर्षी ७ पी ८ वीं शताब्दी तक सां साधु कारण  
 पढ़ने पर ही घर रखते थे, सां भी मात्र एक  
 कटीपत्र ही रखते और यदि वह कटीपत्र भी  
 निष्कारण पाना जाता सां वह साधु कुसाधु  
 माना जाता था । इस विषयमें श्री हरिभद्र  
 शूरिजी ने अपने संधोध प्रकरण में इस प्रकार  
 उल्लेख किया है ।

‘कौशो न कुल्लर लोपे, लज्जर पटिमाइ जह  
 भुज्जेर । गोपाहणो व हिंदइ पेषइ कडिपट्ट-  
 पनकले’ (संधोध प्रकरण ६० । २ ।)

अपने समय में कुसाधुओंका बदरूप दर्शाने  
 लिये श्री हरिभद्रशूरि ने उपमात साधुओंके दण्ड  
 माना है कि ‘‘कल्लर-दुर्लभ वस्त्र सां नही  
 करने, कटिपत्र धारण करना शर्मां है । शरीर पर  
 कप धारण करना है, ऐसीमें लज्जर वस्त्र धारण  
 है कौश-दिग्गज कलेरु करी दण्ड धारण है ।

इस प्रकार साधुओंको एक कदिवस्त्र ही रखने की बात साधित होती है और सो भी सूत्र साहित्य की संकलना हुये बादके ग्रन्थोंके याने अर्थात् चर्चन ग्रन्थोंसे प्रतीत होता है। इस सम्बन्ध में आचारांग सूत्रमें लिखा है कि जो साधु वस्त्र नहीं रखता उसे यह चिन्ता नहीं रहती कि-मेरा वस्त्र कट गया, दूसरा वस्त्र मांगना पड़ेगा, सूत मांगना पड़ेगा, सूई मांगनी पड़ेगी, धागा सीना पड़ेगा, पहनना पड़ेगा इत्यादि ( ३६० )

“वस्त्र रहित रहनेवाले मुनियोंको कदाचित् तृण काटे, ठंडी, ताप लगने, खांस, मच्छुर वगैरहका कष्ट सहना पड़े, परन्तु ऐसा करनेसे लाघव ( अथ चिन्ता-निरुपाधिकता ) प्राप्त होती है और तप भी होता है” ( ३६१ )।

“अतः जो भगवानने कथन किया है उसी को समझ कर उद्योगने तपो सय जगह समानतः जानते रहना, ( ३६२ )

आचारांग सूत्रके उपरोक्त उल्लेख से यह बात साफ मालूम होती है कि समर्थ एव सहन

2

←

-

+

.

,

.

रहित-नग्न होता है उसे यह मालूम होता है कि मैं घासका या कटिका स्पर्श सह सकता हूँ, शीत, ताप, डांस, तप मच्छरों के उपद्रवको सहन कर सकता हूँ एवं अन्य भी प्रतिकूल, अनुकूल परिपहंसा सकता हूँ। परन्तु नग्न रहते हुये लज्जा-परिपहको सहन न कर सकने वाला मुनि कटि-पन्धन-कटिवस्त्र रक्खे। (४३३)

“यदि लज्जाको जीत सकता हो तो अर्चो (नग्न दिगम्बर) ही रहना। जैसे रहते हुये तृणस्पर्श, शीत, ताप, डांस, मच्छर तथा अन्य भी जो अनेक परिपह आवें उन्हें सहन करने ऐसा करनेसे अनुपाधिकता-लाघव प्राप्त होता है और तप भी होता है। अतः जैसा भगवान् कहता है उसीको समझ कर ज्यों घने त्यों सा जगह समता समझते रहना” (४३२)

कितनेएक मुनि एक वस्त्र और एक ही पात्र रक्खते थे या दो वस्त्र और दो ही पात्र रक्खते थे। इस विषयमें निम्न उल्लेख से यत्न-लापा गया है कि—

“जिस साधुके पास पात्रके साथ पात्र एक





तप प्राप्त होता है, अतः जैसा  
 किया है उसे वैसा समझ कर ज्यों  
 समता समझना" (४२५) ।

जो मुनि सहनशीलता के अभाव  
 लज्जाके कारण एक या दो वस्त्र रखते  
 वस्त्रधारी साधुओंके विषयमें आचार्य  
 निम्न लिखे मुजय बतलाया है ।

"निष्ठु या निचूर्णी एषणीय वस्त्रोंकी  
 करे, जैसा मिले वैसा पहने, परन्तु उसमें  
 न करे, तथा उसे धोना या रंगना नहीं  
 धोया हुआ या रंगा हुआ हो तो पहन  
 पूर्व सामान्तर जाने समय वह अवश्य  
 उसे धिपाये नहीं, वस्त्रधारी मुनि  
 आचार है" (५३२) ।

स्वानांग मूत्रमें भी वस्त्र रगनेके या  
 बनावे हैं, जैसे कि "ये तीन कारण हो तो  
 (५३४) एक वस्त्र धारण करना, वस्त्र  
 और परिषद, अर्थात् जो मायू लज्जा,  
 नहीं जीव मर। है और गहरों का  
 हा मरता वह एक वस्त्र धारण करे

जो कारण बस्त्र रगने के ऊपर बतलाये हैं वैसे ही पात्र रगने के कारण भी सूत्र ग्रन्थोंमें उल्लिखित हैं। इस विषयमें भी आचारांग सूत्र के पुर्यात पात्रपणा, नामक प्रकरणमें निम्न लिखित उल्लेख मिलता है।

“मुनि या आर्याको जय कभी पात्रकी आवश्यकता पड़े उस समय तुंघीपात्र या मट्टीका पात्र ग्रहण करनी चाहिए। इसी तरहका कोई भी पात्र ग्रहण करना। जो मुनि युवा या मजदूर पाँधे वाला हो उसे मात्र एक ही पात्र रगना चाहिये, दूसरा नहीं।” (८४१)

उपरोक्त विषयको पुष्ट करने वाला स्थानांगसूत्रमें भी निम्न उल्लेख पाया जाता है -

निर्घन्ता या निर्घन्थी तीन प्रकारके पात्रों को उपयुक्त कर सकते हैं, तुंघी पात्र, काष्ठ पात्र और मृत्तिका पात्र.. पात्र रगनेके कारण रगने लगे हुए स्थानांगसूत्रवाला पात्रवाली शतान्दीशी तपित टोकामें भी निम्न उल्लेख मिलता है -

“कसता, बाल, दूध, नखान दाढ़का निरु-  
जतिधि, घुस और साननाका दण्ड इन सब

लिये पात्र रखनेकी आवश्यकता है; तथा साधारण साधु समुदायके लिये और जो साधु पिना-  
पात्र निरवयव रीतिसे आहार न कर सकता है।  
उसके लिये भी पात्र की आवश्यकता है।”

१—‘जे अचेले परिबुसिए, तस्सणं भिक्खुस्स जो एं  
मरुः—परिजिन्ने मे वरुं, पत्ये जाइस्सामि, सुवं  
आइस्सामि, एइं जाइस्सामि, संधिस्सामि, सीकि  
स्सामि, उहमिम्मामि बोक्कसिस्सामि, परिणि  
स्सामि पाउणिम्मामि’ । (३६०)

“अद्भुता न्य पद्ममंतं मुज्जो अचेलं तण्णकामः  
कुमति, सीयद्यामा कुमति, तेउकामा कुमति, दंम-  
ममगद्यामा कुमति, एगपरे, अन्नपरे विरुवस्से  
कामे अदिपामेति । अचेले सापदं भागममाणे,  
तवं मे अमिगममणागए मवति” (३६१)

“अद्भुतं मगवता ववेदिम तमेव अमिगमेषा मव्वतो  
मव्वनाए ममनयेव मममित्राणिता” । (३६२)

२—“अद्भुता न्य पद्ममंतं मुज्जो अचेलं तण्णकामः  
कुमति, सीयद्यामा कुमति, तेउकामा कुमति, दंम-  
ममगद्यामा कुमति, एगपरे, अन्नपरे विरुवस्से  
कामे अदिपामेति । अचेले सापदं भागममाणे,  
तवं मे अमिगममणागए मवति” (३६१)



४—“जे मिक्खु एगेण वत्थेण परिबुसिते पापविस्सि,  
तस्म एणो एवं भवइ-वित्तिमं वत्थं जाइस्सामि ।  
अइंसणिज्जं वत्थं जाणज्जा, अहापरिगारिणं ।  
वत्थं धारेज्जा-जाव गिम्हे पडिवन्ने, अहापरिउ-  
वत्थं परिइवेज्जा । अदुवा एगमाडे, अदुवा अरे  
लावविणं आगममाणे तवे से अमिममन्नागण मव-  
जहेणं भगवया पवेइणं तमेव अमिममेणा सञ्जा  
मव्वत्ताण् ममत्तमेव, मममिजाणिया” (४२६)

“मे मिक्खु दोदिं वत्थेहिं परिबुसिते पातनिए  
तस्मणं एणो एवं भवति- तत्तिमं वत्थं जाइस्सामि  
मे अइंसणिज्जाइ वत्थाइ जाणज्जा जाव-  
सलु तस्म मिक्खुम्म गाम्मिणिये” (४२४)

“अइ पुण एणं जाणज्जा, उवईने सलु हो  
गिम्हे पडिवन्ने, अहापरिउन्नाइ वत्थाइ पा-  
वेज्जा, अदुवा गतइतरे, अदुवा ओमरेणए, अ-  
एगमाइ, अदुवा अणेजे मापविणं आगममाण  
तवे मे अमिममन्नागण मवति । जहेणं भगा  
वोदिनं तवेव अमिममेणा मव्वत्तो मव्वत्ता  
मव्वत्तमेव ममिजाणिया” (४२२)

५—“म विक्खे स विक्खेणं स पदमणिज्ज  
एवमं जाणज्जा वत्थं जाणज्जा वत्थं जाणज्जा



अच्छी तरह न्हाता धोता हो, इच्छानुसार वस्त्र पहनता हो और ऐसी रीति भाँति रखते हुये भी वह साधु या धर्मगुरुकी हैसियतसे प्रतिष्ठा या पूज्यता प्राप्त कर सकता हो तो मैं नहीं मानता कि उसका दूसरा त्यागी पड़ोसी उसके आचरणका अनुसरण करनेमें जरा भी विलम्ब करेगा। कठिन आचारों को पालन करने में, लज्जाको जीतनेमें, शरीर को वश रखने में और इसी तरहकी अन्य भी त्यागकी अनेक पातों में मनुष्य स्वभावसे ही शिथिल देख पड़ता है। इसी कारण वह अपनी अनुकूलता के अनुसार आचारों, नियमों एवं क्रियाओं को पालन करते हुये यदि धर्माचरण कर सकता हो तो वैसे सुकर नियमों की ओर वह भट भुक जाता है और जहाँ भूखा रहने को कहा जाता हो, वस्त्र रहित होकर आचार पाला जाता हो तथा जहाँ पर शरीरके प्रत्येक सुर्भाने का निरोध किया जाता हो उस तरफ कोई विरला ही मुश्किलसे झुकता है। अंगसूत्र ग्रन्थोंमें जहाँ तक में देख सका हूँ श्री वर्षमान जैसे समर्थ योगी पुरुषके समक्ष भी नष्ट होनेमें श्री पार्वनाथ के सन्तानाय हिचकिचाये हैं। उन्होंने श्रीवर्षमान की

परीक्षा-मात्र कोरी चचनपरीक्षा लेनेके लिये कितने एक प्रश्न पूछे हैं और जब उनसे उनका समाधान हो गया एवं उसमें भगवान् पार्श्वनाथ के सिद्धान्त की साक्षी मिली तब ही उन्होंने श्रीवर्धमान को मस्तक भुकाया है। सूत्रोंमें जहाँ २ पर श्रीवर्धमान और उनके निर्ग्रन्थों के समागम होनेका वर्णन आता है वहाँ पर सब जगह निर्ग्रन्थोंने उन्हें प्रदक्षिणा देकर वन्दन करके अपने वक्तव्य या प्रष्टव्यका प्रारंभ किया है, इस तरहकी संकलना प्राप्त होती है, इतना ही नहीं बल्कि स्कंदक जैसे अन्यमतावलम्बी तापसने भी वर्धमान को मिलते समय जैन निर्ग्रन्थों के योग्य उनका सत्कार किया है, यह उल्लेख भी भगवती सूत्र के दूसरे शतकमें विद्यमान है। परन्तु जहाँपर पार्श्वनाथ के सन्तानीय मुनियोंका वर्णन आता है वहाँ सर्वत्र उन्होंने वर्धमान वा उनके स्थ-विरोको मिलने ही तुल्य साधारण सत्कार करने तकका भी विवेक प्रगट किया हो ऐसा उल्लेख नहीं मिलता। परन्तु उन्होंने वर्धमान या उनके मुनियोंके पास जाकर उनके साथ चान-चीत करके, उन्हें पहचानने के बाद वन्दनादि



करने और उनका धर्म स्वीकृत करनेका उद्योग मिलता है। सूत्रोंमें ऐसे अनेक उद्देश्य विर-  
मान हैं। उनमेंके एक दो उद्देश्यकी ओर मैं  
पाठकोंका ध्यान खींचता हूँ—भगवती सूत्रों  
नयमें शतकके पत्तीसवें उद्देश्यमें एक गांगेय  
नामक पार्श्वनाथ सन्नानाथ की कथा आती  
है, उसमें इस प्रकार पतलाया है कि १ “ए

१ “तेषां कालेषां, तेषां समणेषां वाणिज्यानां  
शामं शयनं होन्था, वण्णाश्रो, दुष्पलासे वेणु, सानं  
समोमदे, परिमाणिग्गया, धम्मो कहिओ, परिमा पडिगद  
तेषां कालेषां, तेषां समणेषां पामावच्चिज्जा गांगेये  
शामं अणगारे जेणव समणे भगवं महावीरे तेषां  
उवागच्छइ, उवागच्छइत्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स  
अदूरमामते ठिच्चा समणं भगवं महावीरे एवं वयासी”

“तत्परमिइ च एं मे (पामावच्चिज्जे) गांगेये अणगा  
समणं भगव महावीरं पत्तवच्चिज्जामइ—मच्चणू मच्चद  
ग्गिमी। तण्णं मे गांगेये अणगां समणं भगवं महावीरं  
तिक्खुतां यायादिगययादिगं वरेइ, वेइइ, गममइ  
वेइत्ता, गमायत्ता एव ययासी—इच्छामि वा मने! तुज्जे  
आतण वाइत्तामाया वच्चाया पनमइइइय, एवं जे  
कानाममिइत्ता अणगां नइइ माणियत्तं ज्ञाय-





वे ऐसे नम्र होते हैं कि सर्वथा अनजान किन्तु गुणी वा तपस्वी मनुष्यको मिलते ही उचित सन्मान करना नहीं चूकते; अथ हमें यह समीक्षण करना चाहिये कि उन ऋजु प्राज्ञोंकी यह स्थिति कहाँ ? और हमारे ऋजु प्राज्ञोंकी वर्धमान जैसे दीर्घ तपस्वीकी परीक्षा लेनेवाली वह भी अनम्रवृत्ति कहाँ ? इस हेतुसे एवं ऐसे ही अन्य भी अनेक प्रमाणोंसे मैं यह निर्णय कर सकना हूँ कि वर्धमानके समय पार्श्वनाथ जीकी प्रजा सुग्वशील हो गई थी और वह भी यहाँ तक कि वर्धमान जैसे महापुरुष को पहचान सकने जितनी भी स्थिति न रही थी । भगवती सूत्रमें उसको संकलित करने वालेने एक जगह पार्श्वापत्यीय कालास्यवेशी अणुगार के मुखसे वर्धमान के निर्ग्रन्थोंकी सामायिकके सन्यन्धमें चर्चा कराई है । उस चर्चाके अन्त में वह पार्श्वापत्यीय साधु इस बातको स्वीकार करता है कि—“हे निर्ग्रन्थो ! जैसा तुमने सामायिक का स्वरूप बतलाया है ऐसा मैंने नहीं सुना, एवं वैसा मुझसे किसीने नहीं कहा” इत्यादि यह विषय भगवती सूत्रमें दस प्रकार

⊗ इस २१

अणगार बुद्ध हुआ-बोधको प्राप्त हुआ, अणगार

⊗ "एत्थणं से ( पामावधिज्जे )

अणगारे संशुद्धे येरे मगगंते वंदर, यनेना;  
 समंसिता एवं वयासी-एएसि णं मंते ! पयाणं  
 अण्णाणयाए, असण्णयाए, अणोहियाए, अण्णिमेषं  
 अदिहाणं, असुयाणं, असुयाणं, अविण्णा. णं अमो  
 गडाणं, अण्णोच्छिद्वयाणं, अण्णिज्जुदाणं, अण्णुवया  
 याणं, एयमहुं णो मरुहिए, णो पत्तिहिए, णो  
 इयाणि मंते ! एएसि णं पयाणं जाण्णाए,  
 बोहियाए, अण्णिमेषं, दिहाणं सुयाणं, विण्णा. णं  
 वागडाणं, बोच्छिद्वयाणं, णिज्जुदाणं उवयाणिया  
 एयमहुं मरुहामि, पत्तिहामि, रोणमि, एवमेवं मे जडे  
 तुममे वयह । एए णं ने येग मगगंतो कालामवेमियु  
 अणगारं एवं वयासी-अरहादि अज्जो !, पत्तिया  
 अज्जो !, रोणदि अज्जो ! ने जडेय चरहे वयामो ।  
 णं कालामवेमियु । अणगार, ४१ वयासे वडा, तमे  
 वंदर, अण्णिमेषं ७१ वयासी-एरुदा, अण्णि  
 बुद्ध अण्णाणया ४१ वयासी-एरुदा, अण्णि  
 मरुहइमए ४१ वयासी-एरुदा, अण्णि  
 पत्तिहइमए ४१ वयासी-एरुदा, अण्णि  
 रोणमइमए ४१ वयासी-एरुदा, अण्णि

गामादिकादिके स्वरूप या जानकार हुआ और  
 सने वर्धमान के यमजह स्थविरोंको यन्दन,  
 मन परके इस प्रकार पाहा—कि हे भगवन्तो !  
 मुझे जो पद पाहे हैं इन्हें पूर्वमें न जाननेसे,  
 हल न सुननेसे, इसके साथ सम्बन्ध रखने-  
 माला बांधि लाभ न प्राप्त होनेसे या मुझमें  
 वषं विचार करनेकी बुद्धि न होनेसे, इस विषय  
 को प्यारेवार बांध न रहनेसे, उन पदोंको मैंने  
 वषं नहीं देखा था और, न सुना था इससे वे पद  
 मरी स्मृतिमें न आनेके कारण उन्हें विशिष्ट तथा  
 न जान सकने से, गुरुने उन्हें विशेषता पूर्वक न  
 ध्यान करनेसे, वे पद विपक्षसे अपृथग् भूत  
 होनेसे, गुरुने उन्हें बड़े ग्रन्थोंसे सत्तेपमें उद्धृत  
 न किया होनेसे और इसी हेतु वे पद अनव-  
 धारित रहनेसे आपसे कथन किये गये इस अर्थ  
 को मैंने न सहहा था । उस अर्थ पर मुझे वि-  
 धास या रुचि भी न थी । परन्तु हे भगवन्तो !  
 अब मैंने आपसे इन पदोंको जाना है, सुना  
 है और यावत् अवधारित किया है, इससे मुझे  
 आपके कथन किये अर्थमें श्रद्धा, विश्वास और  
 रुचि हुई है एवं आप जो कहने हैं वह उसी  
 प्रकार है ।

इस प्रकार एक ऋजु ब्राह्मण संप्रदाय के  
 बाणी सुनकर वर्धमानके ब्रह्मजड़  
 कहा कि हे आर्य ! हम जो कहते हैं उसमें  
 करो, विश्वास करो और रुचि रखो।  
 बाद उस ऋजुब्राह्मण कालास्पयेयिक मुनि  
 स्थविरोंसे कहा कि हे भगवन्तो ! मेरी ऐसी  
 वृत्ति है कि अपना चातुर्याम धर्म छोड़कर  
 आपके प्रतिक्रमण सहित पंचयाम धर्मको अंगी-  
 कार करके विचरूँ । इसके उत्तरमें स्थविरोंने  
 विशेष कोमलता पूर्वक कहा कि हे देवप्रिय !  
 जैसे सुख पैदा हो वैसे करो और वैसे करनेमें  
 विलम्ब न करो । (भगवद्गीता सूत्र अजीम • ५ •  
 १३४-१३५) ।

इस उल्लेखमें वर्धमानके ब्रह्मजड़ शिष्योंसे  
 ऋजुब्राह्मण पार्श्वोपर्ययने सर्वथा न जाना हुआ  
 जाना, न सुना हुआ सुना और वैसे करके  
 उसने अपना पूर्वोपर से चला आता चातुर्याम  
 मार्ग छोड़ और ब्रह्मजड़ोंका समप्रतिक्रमण पंच-  
 याम मार्ग स्वीकार कर अपना कल्याण सिद्ध  
 किया । यह बात भी मंत्री पुर्यांक कल्याण को  
 पुष्ट करने मान्यम दर्श है । इसके उपरान्त

मार्ग बदलने के सम्बन्धमें वर्तमान अंगगच्छनों  
 के पार्श्वपत्त्योंसे लगने लगे अन्य भी ऐसे करनेवा  
 रहने उपलब्ध होने हैं, जो मेरी मान्यताया  
 समर्थन करते हैं। इस विषयमें मैं पार्श्वनाथ और  
 वर्धमान, नामक एक सविस्तर निबन्ध लिखना  
 चाहता हूँ। अतएव यहाँपर इस विषयका  
 विस्तार करके प्रस्तुत निबन्धका कलेवर पढ़ाना  
 न्यर्थ है। अस्तु ऊपर बतलाई हुई मेरी तमाम  
 दलीलें इस बातको स्पष्टतया तृप्ति करती हैं  
 कि वर्धमानके समयमें पार्श्वनाथ की पाड़ी  
 कमला गई थी, वह उत्तम त्यागके जलसे  
 संचित न होती थी, किन्तु उसे सुखशीलताका  
 कैपाकके रस जैसा आपातमधुर पानी मिल-  
 ता रहता था। पाठकोंको स्मरण रखना चाहिये  
 कि मैं श्वेताम्बरता और दिगम्बरताके मूलकी  
 घोष कर रहा हूँ। मुझे अपने पथानतिजन्य  
 मननके बाद पार्श्वपत्त्योंकी सुखशीलता में ही  
 उसका मूल समाया हुआ मालूम देता है।  
 वर्धमानके आसपास के पार्श्वनाथके सन्तानीयों  
 की सुखशीलता में मुझे कुछ भी मीनमेख मालूम  
 नहीं देती, एवं उनकी श्रुति और सरलता-  
 प्राज्ञतामें भी मेरा कोई मतभेद नहीं है। इसमें



इस प्रकार एक ऋजु ब्राह्म संप्रदाय के मुनि  
 वाणी सुनकर वर्धमानके वक्त्रजड़ स्थविरोंने उसे  
 कहा कि हे आर्य ! हम जो कहते हैं उसमें मद्दा  
 करो, विश्वास करो और रुचि रखो। इसके  
 बाद उस ऋजुब्राह्म कालास्यवेशिक मुनि  
 स्थविरोंसे कहा कि हे भगवन्तो ! मेरी ऐसी  
 वृत्ति है कि अपना चातुर्याम धर्म छोड़कर  
 आपके प्रतिक्रमण सहित पंचयाम धर्मको भंगी  
 कार करके विचरूँ । इसके उत्तरमें स्थविरोंने  
 विशेष कोमलता पूर्वक कहा कि हे देवप्रिय !  
 जैसे मुख पैदा हो वैसे करो और वैसे करनेमें  
 विलम्ब न करो । (भगवती सूत्र अजीम० पृ  
 १३४-१३५) ।

इस उल्लेखमें वर्धमानके वक्त्रजड़ शिष्यों  
 ऋजुब्राह्म पार्श्वोपरधने सर्वथा न जाना हुआ  
 जाना, न सुना हुआ सुना और वैसे कर  
 उसने अपना पूर्यापर से चला आता चातुर्या  
 मार्ग छोड़ और वक्त्रजड़ोंका सप्रतिक्रमण पं  
 चयाम मार्ग म्योकार कर अपना कल्याण सि  
 क्षिप्त । यह बात श्री मेरी प्रयोग कल्पना क  
 पुत्र करती मान्य है । ————— रान



100 100 100 100

100 100 100 100

100



अगले साप्ताहिकों इतना कठिन कामा पादिनि  
 कठिनताही कमजोरों की भी सापुनिक प्रवृ  
 त्ति नई नई नकल । इसी कठिनाई के पक्ष  
 इस समयक, गद्यगुरुओंमें पुनः व्यापक  
 नई नई धारा इससे न निर्देशोंके भाव  
 गान गद्यन करने लगे । इस वक्त में तबे में  
 वनन । व गद्यनानुसार वर्तमानता ही  
 भाव्य करने व इस प्रकार नकल वही पुन  
 वक्तव्य व्यापक । इस प्रकारका वा  
 वक्तव्य ।

१०१ : दाका गद्यन विद्या काना है  
 १०२ : वक्तव्य वक्तव्य व्यापक व्यापक है, व  
 १०३ : वक्तव्य वक्तव्य व्यापक है व्यापक वक्तव्य के  
 १०४ : वक्तव्य वक्तव्य व्यापक है व्यापक वक्तव्य के  
 १०५ : वक्तव्य वक्तव्य व्यापक है व्यापक वक्तव्य के  
 १०६ : वक्तव्य वक्तव्य व्यापक है व्यापक वक्तव्य के  
 १०७ : वक्तव्य वक्तव्य व्यापक है व्यापक वक्तव्य के  
 १०८ : वक्तव्य वक्तव्य व्यापक है व्यापक वक्तव्य के  
 १०९ : वक्तव्य वक्तव्य व्यापक है व्यापक वक्तव्य के  
 ११० : वक्तव्य वक्तव्य व्यापक है व्यापक वक्तव्य के



भगवत् आत्मस्थानको इत्यत्रा कटिन कर्मा धा रि ति  
 कटिननाती कर्माकाको भी आपुनिक प्रयु  
 नदी गर्दन सकला । इती कटिनाई के प्रमाण  
 इति प्रमाणक नमगुरुधर्मि पुनः श्यामका के  
 नाह दुःख धीर इति न निर्धर्मके माया  
 नाः नाः प्रमाण कर्माका । इति कर्मा ना निर्धर्म  
 कर्मा न क कर्माकाया कर्माकाकी इति  
 प्रमाण कर्मा न । इति प्रमाण कर्मा कर्मा पुनः  
 नाः प्रमाण श्यामका नम प्रमाणका ना निर्धर्म  
 पुनः ॥

॥ १ ॥ ना नाका वादना रिता कर्मा है  
 ॥ २ ॥ ना नाका प्रमाणका आया कर्मा है, ना  
 ॥ ३ ॥ ना नाका प्रमाण है ना प्रमाणका है  
 ॥ ४ ॥ ना नाका प्रमाणका प्रमाणका प्रमाणका  
 ॥ ५ ॥ ना नाका प्रमाणका प्रमाणका प्रमाणका  
 ॥ ६ ॥ ना नाका प्रमाणका प्रमाणका प्रमाणका  
 ॥ ७ ॥ ना नाका प्रमाणका प्रमाणका प्रमाणका  
 ॥ ८ ॥ ना नाका प्रमाणका प्रमाणका प्रमाणका  
 ॥ ९ ॥ ना नाका प्रमाणका प्रमाणका प्रमाणका  
 ॥ १० ॥ ना नाका प्रमाणका प्रमाणका प्रमाणका

































































































पेक्षितं मे × × × वडिरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु जिण-  
 ञ्जदाओ" (स० पृ० ६३) यहाँ पर उपयुक्त किया  
 हुआ चैत्यस्तंभ शब्द भी उसी अर्थको सूचित  
 करता है जो चैत्यका प्राचीन और प्रधान अर्थ  
 है । टीकाकार महाशयने भी यहाँपर उसी  
 मुख्य अर्थका अनुसरण किया है (सुधर्मसभामध्ये  
 पट्टियोजनमानो माणवको नान चैत्यस्तंभोऽस्ति, तत्र  
 वज्रमयेषु गोलवट्ट वृत्ता वर्तुलाः ये समुद्रका भाजन-  
 विशेषाः तेषु जिनसक्योनि + + + तीर्थकराणां ×  
 अस्थानि प्रज्ञप्तानि" (स० पृ० ६४) अर्थात् सुधर्म  
 सभामें एक चैत्यस्तंभ है, उसमें वज्रमय गोला-  
 कार भाजनमें तीर्थकरों की हड्डियां रक्खी हुई  
 पतलाई हैं" टीकाकारने इस स्तंभकी ऊंचाई ६०  
 योजन पतलाई है, पाठकोंको इस तरफ ध्यान  
 देनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह देवताई  
 स्तंभ है, मैं तो उसे ६० योजन के बदले ६००००  
 योजन ऊंचा माननेके लिये भी तैयार हूँ ?

(२) "रायाधम्मकहानु पं लायाणं × × × पेइ-  
 दाई"-स० (पृ० ११६) (३) "उवामगदनातु पं उवा-  
 मगातं × × × पेइदाई (स० पृ० ११६) (४) × अंत-  
 गदातं × × पेइदाई"-स० पृ० १२१) (५) "अनु-  
 एतेवकाइपातं × पेइदाई"-स० पृ० १२२) तथा





















## देवद्रव्यवाद ।



मेरा तीसरा मुद्दा देवद्रव्यवाद नामक है, अप मैं उसका व्योरेवार प्रारंभ करता हूँ। चैत्यवादके साथ यह विषय घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है इसी कारण मैंने चैत्यवाद पर प्रथम पर्चा की है और उसके बाद तुरन्त ही इसपर विचार करना उचित समझा है। जो यह मानने हैं कि जहाँ मूर्ति हो वहाँ देवद्रव्य भी अवश्य होना चाहिये, मेरी मान्यतासे उनका यह मन अयुक्त है, तथापि कुछ देरके लिये हम उसे मान भी लेंगे जो जिन कारणोंसे देवद्रव्यकी अविहितता और अर्थाधीन करणना साधित हो सकती है वे कारण ये हैं—उपरोक्त चैत्यवादकी पर्चासे यह पान हो आप भली प्रकार जान सके हैं कि मूर्तिवाद चैत्यवादके बादका है पाने उसे चैत्यवाद जितना अर्थाधीन माननेके लिये हमारे पान एक भी ऐसा मजबूत प्रमाण नहीं है जो शारीरिक तद्विधि निष्पन्न हो जातिहानिकर हो। जो जो हम लोग हमारे कुलाचार भी मूर्तिवादको अनादि का गहराने तथा अर्थाधीन भाषित समझाने





























और रत्नोंके तिगड़े की रचना करनेमें कैसी कुशलताका परिचय दिया है !!! मुझे तो यह एक पिलकुल विचित्र बात मालूम होती है कि उपदेशक भी किलेमें घुसकर उपदेश देते होंगे या उन्हें किसीके दरसे किलेमें बैठकर उपदेश देना पड़ना होगा ? इस प्रकार उपदेश और किलोंके बीच किसी तरहका सम्बन्ध न होने पर भी उन्होंने उपदेशके समय जो तीन किले, किमनीएक यापिकाये-वायाड़ियां एवं कितनेक नाटक भी बना दिये हैं और खुद भगवान महा-वीरका भी अनुमुख्य बना दिया है, उनकी इस शिल्पकलाके सामने विश्वकर्माको भी शर्मना पड़ा होगा । भगवान महारथार सर्वज्ञ थे इस बातको हम सब मानते हैं, इससे हम उनकी सर्वज्ञताका लाभ लेकर अपने मान हुये और प्रमाण पुरुषोंके नामोल्लेख उनके मुखसे बनावटी नीतिमें कराये यह कितना अनुचित कार्य है और भगवान महारथारकी आज्ञातना करनेवाला है हम बातका विचार विचारक व्यर्थ कर सकते हैं।

यह कहें कि उस महापुरुषने अपने पवित्र मुखमें मेरे पिताका जीवन चरित्र कथन किया था । आप कहें कि महारथारने भी हमारे संगे















































शान्त करनेके लिये मैंने इस प्रकार  
 परिस्थिति का ऐतिहासिक चित्र आपके  
 रक्खा है। जो आप सब इस विषयमें  
 करके पड़ोंके साथ परामर्श कर हमारे  
 तथा सामाजिक  
 उन्नतिके रोधक या बाधक हो रहे हैं वे  
 धर्मसे न रहे इस प्रकारका योग्य  
 करेंगे तो मैं इस अपने प्रयासको सफल  
 समझूंगा। अब राष्ट्रसेवाके समान  
 हम भाषकों पर ही आपड़ी है। हमने  
 या स्वामिजीओंके विश्वासपर ही  
 समस्त निभाया, परन्तु इससे हमारा  
 उद्धार न हुआ, न होता है और अब होगा भी-

